



# International Journal of Advanced Research in Education and Technology (IJARETY)

Volume 12, Issue 3, May-June 2025

Impact Factor: 8.152



# भारतीय ज्ञान और परंपरा में शिक्षा का लोक- कल्याणकारी दृष्टिकोण

Dr. Kusum Gupta

Assistant Professor, Bal Bharti T.T. College, Gandhi Nagar (Alwar) Rajasthan, India

**सारांश (Abstract):** प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय दार्शनिक परंपरा में निहित शिक्षा की उस मूल अवधारणा का विश्लेषण करता है, जिसमें शिक्षा को केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन न मानकर समाज एवं संपूर्ण मानवता के कल्याण का आधार माना गया है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में विद्या का उद्देश्य व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसके नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्माण करना रहा है, जिससे एक सुसंस्कृत, करुणामय और कर्तव्यनिष्ठ समाज का निर्माण संभव हो सके। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों, गुरुकुल व्यवस्था, बौद्ध-जैन शिक्षण परंपरा तथा संत-भक्ति आंदोलन में शिक्षा की भूमिका सदैव लोकहित, सेवा-भाव और सामाजिक समरसता से जुड़ी रही है।

भारतीय शिक्षा-दृष्टि का मूल आधार "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की भावना पर आधारित है, जहाँ शिक्षा का अंतिम लक्ष्य व्यक्ति को आत्मकेंद्रित न बनाकर समाजोपयोगी नागरिक के रूप में विकसित करना है। वर्तमान वैश्विक शिक्षा-परिदृश्य में जब शिक्षा अधिकतर रोजगारोन्मुख एवं प्रतियोगितात्मक बनती जा रही है, तब भारतीय ज्ञान-परंपरा का यह लोक-कल्याणकारी दृष्टिकोण शिक्षा को पुनः मानवीय, नैतिक और सामाजिक मूल्यों से जोड़ने की दिशा में एक प्रभावशाली मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह अध्ययन समकालीन शिक्षा-नीतियों में मूल्य-आधारित एवं लोक-कल्याण-उन्मुख शिक्षा के समावेशन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

**मुख्य शब्द :** भारतीय ज्ञान-परंपरा, शिक्षा-दर्शन, लोककल्याण, नैतिकता, नीति, गुरुकुल, समग्र विकास।

## I. परिचय

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध ज्ञान-परंपराओं में से एक है, जिसमें शिक्षा को सदैव केवल सूचना या कौशल अर्जन का साधन न मानकर मानव-जीवन के समग्र विकास का आधार माना गया है। भारतीय चिंतन में *विद्या* का अर्थ केवल बौद्धिक उपलब्धि तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह व्यक्ति के चारित्रिक निर्माण, नैतिक उत्थान, आत्मिक विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वित रूप में विकसित हुई है। इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा-परंपरा का मूल लक्ष्य ऐसा नागरिक तैयार करना रहा है जो अपने ज्ञान का उपयोग केवल अपने हित के लिए नहीं, बल्कि समाज, राष्ट्र और समस्त मानवता के कल्याण के लिए करे। यही दृष्टिकोण भारतीय शिक्षा को एक विशिष्ट लोक-कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करता है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को *अहंसे व्ययम्* की ओर ले जाना है, अर्थात् व्यक्तिगत चेतना से सामाजिक चेतना की ओर उन्नत करना। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा संत परंपरा में शिक्षा को जीवन-मूल्यों, कर्तव्यबोध, करुणा, सह-अस्तित्व और सेवा की भावना से जोड़कर देखा गया है। गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थी केवल शास्त्र-अध्ययन तक सीमित नहीं रहता था, बल्कि वह श्रम, सेवा, अनुशासन और सामाजिक सहभागिता के माध्यम से जीवन का व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करता था। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति के चरित्र-निर्माण तथा समाज के नैतिक विकास का सशक्त माध्यम बनी। समकालीन परिप्रेक्ष्य में शिक्षा अधिकतर रोजगारोन्मुख, प्रतियोगितात्मक और यांत्रिक होती जा रही है, जिससे सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिकता और संवेदनशीलता जैसे मूल्य अपेक्षाकृत कमजोर पड़ते दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान-परंपरा में निहित लोक-कल्याण दृष्टिकोण आज की शिक्षा-व्यवस्था को मानवीय, मूल्यनिष्ठ और समाजोपयोगी बनाने हेतु एक प्रभावशाली वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है।

**भारतीय ज्ञान-परंपरा - अर्थ एवं स्वरूप :** भारतीय ज्ञान-परंपरा का तात्पर्य उस सतत बौद्धिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक विरासत से है जो हजारों वर्षों से भारतीय समाज के जीवन-मूल्यों, चिंतन-प्रणाली और सामाजिक संरचना को दिशा प्रदान करती आई है। इसका मूल आधार वेदों में निहित ऋषि-परंपरा से विकसित हुआ, जहाँ ज्ञान को केवल भौतिक उपलब्धि का साधन न मानकर आत्मिक उत्थान और लोकहित का माध्यम माना गया। उपनिषदों में विद्या को आत्मबोध, सत्य-अन्वेषण और ब्रह्मज्ञान के रूप में

परिभाषित किया गया, जिससे मनुष्य के भीतर विवेक, संयम और करुणा का विकास होता है। स्मृति-ग्रंथों और धर्मशास्त्रों में शिक्षा को सामाजिक कर्तव्यों, नैतिक अनुशासन और सामाजिक व्यवस्था के संचालन से जोड़ा गया, जिससे व्यक्ति का जीवन लोकमंगल की दिशा में प्रवाहित हो।

बौद्ध और जैन परंपराओं ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को करुणा, अहिंसा, समता और आत्मसंयम के मूल्य प्रदान किए। बौद्ध विहारों और जैन संघों की शिक्षण व्यवस्था ने ज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाकर शिक्षा को लोकसेवा और सामाजिक जागरण का साधन बनाया। भक्ति और संत परंपरा ने ज्ञान को जनभाषा में प्रस्तुत कर सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव और अज्ञान के विरुद्ध जनचेतना का निर्माण किया। इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परंपरा का दायरा केवल दार्शनिक ग्रंथों तक सीमित न रहकर सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष—नैतिकता, शासन, शिक्षा, धर्म और लोकव्यवहार—को समाहित करता है।

**शिक्षा का भारतीय दृष्टिकोण :** भारतीय शिक्षा-दृष्टि का आधार *ज्ञान + चरित्र + कौशल + सामाजिक उत्तरदायित्व* के समन्वित विकास पर आधारित रहा है। यहाँ शिक्षा को केवल सूचना संग्रह या आजीविका का साधन न मानकर मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया माना गया है। गुरुकुल परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी में बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ आत्मसंयम, अनुशासन, सेवा-भाव, श्रम-सम्मान और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का विकास करना था। गुरु-शिष्य संबंध केवल ज्ञान हस्तांतरण का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों की दीक्षा का माध्यम था।

भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा का लक्ष्य ऐसा व्यक्ति तैयार करना रहा है जो अपने ज्ञान का उपयोग केवल निजी स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि समाज के व्यापक हित के लिए करे। इसी कारण भारतीय ग्रंथों में विद्या को "सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्" से जोड़ा गया है, जहाँ सत्य विवेक का, शिव लोककल्याण का और सुन्दर सौंदर्यबोध व संतुलन का प्रतीक है। इस समग्र दृष्टि से शिक्षा व्यक्ति को समाज से जोड़ती है और उसे लोकसेवा की ओर प्रेरित करती है।

**लोककल्याण की अवधारणा :** भारतीय चिंतन में *लोककल्याण* की अवधारणा अत्यंत व्यापक और गहन है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" की भावना भारतीय दर्शन के केंद्र में स्थित है, जहाँ व्यक्ति का सुख समाज के सुख से जुड़ा हुआ माना गया है। लोककल्याण का अर्थ केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, नैतिक व्यवस्था, सहअस्तित्व, करुणा और सेवा के माध्यम से समाज में संतुलन और सौहार्द स्थापित करना है। शिक्षा को भारतीय परंपरा में लोककल्याण का प्रमुख साधन माना गया है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही समाज में नैतिकता, सद्भाव और उत्तरदायित्व का प्रसार करता है। सहअस्तित्व की भावना, सामाजिक कर्तव्य, परस्पर सहयोग और सेवा-भाव भारतीय लोककल्याण दृष्टिकोण के मूल तत्व हैं। इस प्रकार लोककल्याण और शिक्षा परस्पर पूरक हैं—शिक्षा लोककल्याण का निर्माण करती है और लोककल्याण शिक्षा को सार्थक बनाता है।

**शिक्षा के लक्ष्य: आत्म-विकास से लोक-कल्याण तक :** भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा का लक्ष्य केवल ज्ञानार्जन, डिग्री-प्राप्ति अथवा आजीविका की तैयारी नहीं रहा है, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ऐसा निर्माण करना रहा है जिससे वह अपने जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हुए समाज, राष्ट्र और मानवता के कल्याण में सक्रिय योगदान दे सके। भारतीय दर्शन में शिक्षा को मनुष्य के भीतर विद्यमान संभावनाओं को विकसित करने वाली शक्ति के रूप में देखा गया है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को केवल कुशल कार्यकर्ता नहीं, बल्कि विवेकशील, संवेदनशील, नैतिक तथा उत्तरदायी नागरिक बनाना रहा है। इस दृष्टिकोण में आत्म-विकास और लोक-कल्याण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं; आत्म-विकास लोक-कल्याण की नींव है और लोक-कल्याण आत्म-विकास की पराकाष्ठा।

उपनिषदों में वर्णित "सा विद्या या विमुक्तये" की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि विद्या वही है जो मनुष्य को बंधनों से मुक्त करे। यह मुक्ति केवल अज्ञान से नहीं, बल्कि संकीर्ण स्वार्थ, अहंकार, लोभ और असंवेदनशीलता से भी है। जब व्यक्ति इन बंधनों से मुक्त होता है, तभी उसका आत्म-विकास पूर्ण होता है। ऐसा विकसित व्यक्ति अपने अस्तित्व को केवल निजी हित तक सीमित नहीं रखता, बल्कि अपने ज्ञान, सामर्थ्य और विवेक का उपयोग समाज के व्यापक हित के लिए करता है। इस प्रकार आत्म-विकास का अंतिम उद्देश्य लोक-कल्याण में परिणत होता है।

भारतीय शिक्षा-दृष्टि में आत्म-विकास का अर्थ केवल बौद्धिक विकास नहीं है। इसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक, भावनात्मक और आत्मिक विकास का संतुलित समन्वय निहित है। शिक्षा व्यक्ति में विवेक का विकास करती है, जिससे वह सत्य और असत्य, उचित और अनुचित, हित और अहित के बीच अंतर करना सीखता है। यह विवेक उसे समाज में उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण के लिए प्रेरित करता है। इसी विवेक के आधार पर व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पहचानता है और समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। इस प्रकार आत्म-विकास सामाजिक चेतना का मार्ग प्रशस्त करता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में आत्म-विकास को समाज से अलग करके नहीं देखा गया। गुरुकुल व्यवस्था इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। वहाँ शिक्षा केवल शास्त्र-अध्ययन तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन की सम्पूर्ण तैयारी थी। विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में रहते हुए सेवा, श्रम, अनुशासन, आत्मसंयम और सहयोग जैसे गुणों का अभ्यास करते थे। यह अभ्यास उनके व्यक्तित्व को परिष्कृत करता था और उन्हें समाजोपयोगी बनाता था। इस प्रक्रिया में आत्म-विकास और लोक-कल्याण एक साथ विकसित होते थे।

आत्म-विकास के बिना लोक-कल्याण की कल्पना अधूरी है। जब व्यक्ति का चरित्र सुदृढ़ होता है, जब उसके भीतर करुणा, सहिष्णुता और न्याय की भावना विकसित होती है, तभी वह समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। भारतीय शिक्षा में सत्य, अहिंसा, करुणा, सेवा, त्याग, कर्तव्य और अनुशासन जैसे मूल्यों का समावेश इसी उद्देश्य से किया गया था। ये मूल्य व्यक्ति को केवल अच्छा मनुष्य ही नहीं बनाते, बल्कि समाज को नैतिक और स्थिर आधार प्रदान करते हैं। आत्म-विकास के इन गुणों के अभाव में कोई भी समाज दीर्घकाल तक सुदृढ़ नहीं रह सकता।

लोक-कल्याण का अर्थ भारतीय संदर्भ में केवल भौतिक समृद्धि नहीं है। इसमें सामाजिक न्याय, नैतिक संतुलन, मानवीय गरिमा और सामाजिक सौहार्द का निर्माण भी सम्मिलित है। भारतीय चिंतन में यह स्वीकार किया गया है कि समाज तभी प्रगति कर सकता है जब उसके प्रत्येक सदस्य का विकास सुनिश्चित हो। इसी भावना को वैदिक मंत्र "सर्वे भवन्तु सुखिनः" में अभिव्यक्त किया गया है। शिक्षा इस आदर्श को व्यवहार में उतारने का प्रमुख साधन है, क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति को इस व्यापक दृष्टि से परिचित कराती है। जब आत्म-विकसित व्यक्ति समाज में सक्रिय होता है, तो वह केवल अपने अधिकारों पर नहीं, बल्कि अपने कर्तव्यों पर भी समान रूप से ध्यान देता है। वह सामाजिक समस्याओं को अपनी समस्याएँ समझता है और उनके समाधान के लिए प्रयास करता है। यही लोक-कल्याण की सच्ची भावना है। भारतीय शिक्षा ने सदैव इस भावना को विकसित करने का प्रयास किया है। शिक्षा का लक्ष्य ऐसा नागरिक बनाना रहा है जो समाज में शांति, समरसता और सहयोग को बढ़ावा दे।

बौद्ध, जैन और भक्ति परंपराओं ने इस लक्ष्य को और अधिक सुदृढ़ किया। बुद्ध की करुणा और अहिंसा की शिक्षा आत्म-विकास को लोक-कल्याण से जोड़ती है। जैन दर्शन का आत्मसंयम और अपरिग्रह समाज में संतुलन और शांति स्थापित करता है। संत परंपरा ने शिक्षा को लोकजागरण का साधन बनाकर समाज के कमजोर वर्गों को आत्मसम्मान और चेतना प्रदान की। इन सभी परंपराओं में शिक्षा का उद्देश्य आत्म-विकास को सामाजिक उत्थान में परिवर्तित करना रहा है।

आधुनिक युग में शिक्षा का स्वरूप काफी हद तक बदल गया है। आज शिक्षा मुख्यतः रोजगार और आर्थिक उन्नति से जुड़ गई है। यद्यपि यह विकास आवश्यक है, किंतु जब शिक्षा केवल इसी तक सीमित हो जाती है तो आत्म-विकास और लोक-कल्याण जैसे उद्देश्य गौण हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में नैतिक संकट, सामाजिक असंतुलन और व्यक्तिगत तनाव बढ़ने लगते हैं। इस संदर्भ में भारतीय शिक्षा-दृष्टि का आत्म-विकास से लोक-कल्याण तक का लक्ष्य आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

यदि आधुनिक शिक्षा में भारतीय ज्ञान-परंपरा के इस दृष्टिकोण को पुनः स्थापित किया जाए, तो शिक्षा न केवल आर्थिक प्रगति का साधन बनेगी, बल्कि सामाजिक उत्थान और मानवीय विकास की भी आधारशिला बनेगी। शिक्षा व्यक्ति को केवल सफल नहीं, बल्कि सार्थक बनाएगी। यही किसी भी शिक्षा व्यवस्था की सर्वोच्च उपलब्धि है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा का लक्ष्य आत्म-विकास से आरंभ होकर लोक-कल्याण में परिणत होता है। आत्म-विकास इसके बीज हैं और लोक-कल्याण उसका फल। इस समन्वय के बिना शिक्षा अधूरी है और समाज असंतुलित। अतः शिक्षा को इस व्यापक उद्देश्य के साथ पुनः परिभाषित करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

**लोककल्याण के प्रमुख शैक्षिक मूल्य :** भारतीय ज्ञान-परंपरा में लोककल्याण केवल सामाजिक नीति या शासन व्यवस्था का विषय नहीं रहा है, बल्कि शिक्षा की आत्मा के रूप में विकसित हुआ है। भारतीय चिंतन में यह स्वीकार किया गया है कि किसी भी समाज की वास्तविक उन्नति उसके नागरिकों के नैतिक चरित्र, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदना पर निर्भर करती है। यही कारण है कि शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया न मानकर लोककल्याणकारी मूल्यों के निर्माण का प्रमुख माध्यम माना गया। इन मूल्यों के बिना शिक्षा अधूरी तथा समाज अस्थिर माना गया है।

लोककल्याण के लिए आवश्यक सबसे प्रमुख शैक्षिक मूल्य **सत्य** है। सत्य भारतीय शिक्षा-दृष्टि की आधारशिला है। सत्य का अर्थ केवल तथ्यात्मक सत्य नहीं, बल्कि विचार, वाणी और कर्म की शुद्धता है। शिक्षा व्यक्ति को सत्यनिष्ठ बनाती है, जिससे समाज में विश्वास, पारदर्शिता और नैतिकता का विकास होता है। सत्य के बिना न तो व्यक्ति का आत्मविकास संभव है और न ही समाज का स्थायी कल्याण। इसलिए प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में सत्य को जीवन-मूल्य के रूप में विकसित करने पर विशेष बल दिया गया।

**अहिंसा** लोककल्याण का दूसरा आधारभूत मूल्य है। भारतीय शिक्षा में अहिंसा को केवल शारीरिक हिंसा से दूर रहने तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि इसे मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी अपनाने की शिक्षा दी गई। अहिंसा व्यक्ति को सहिष्णु, संयमी

और संवेदनशील बनाती है। जब शिक्षा अहिंसा को विकसित करती है, तब समाज में घृणा, द्वेष और संघर्ष के स्थान पर शांति और सौहार्द की स्थापना होती है, जो लोककल्याण के लिए अनिवार्य है। **करुणा** लोककल्याणकारी शिक्षा का प्राण तत्व है। करुणा व्यक्ति को दूसरों के दुःख को समझने और उनके कष्ट को दूर करने के लिए प्रेरित करती है। भारतीय शिक्षा में करुणा को मानवता का मूल धर्म माना गया है। जब शिक्षा करुणा विकसित करती है, तब समाज में परस्पर सहयोग, सहानुभूति और सामाजिक एकता का विस्तार होता है। करुणा के बिना शिक्षा केवल बौद्धिक अभ्यास बनकर रह जाती है।

**सेवा और त्याग** भारतीय शिक्षा के ऐसे मूल्य हैं जो व्यक्ति को समाज से जोड़ते हैं। सेवा व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाकर समाज के हित में कार्य करने की प्रेरणा देती है, जबकि त्याग व्यक्ति को व्यक्तिगत सुविधाओं का त्याग कर समाज के कल्याण के लिए समर्पित होना सिखाता है। गुरुकुल व्यवस्था में सेवा को अनिवार्य शिक्षा माना गया था। विद्यार्थी गुरु, आश्रम और समाज की सेवा के माध्यम से लोककल्याण का व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। **समता और न्याय** भी लोककल्याण के केंद्रीय शैक्षिक मूल्य हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानवान नागरिक तैयार करना नहीं, बल्कि न्यायप्रिय और समानतावादी समाज का निर्माण करना भी है। जब शिक्षा व्यक्ति में समता और न्याय की भावना विकसित करती है, तब वह सामाजिक भेदभाव, शोषण और अन्याय के विरुद्ध खड़ा होता है। इस प्रकार शिक्षा समाज को अधिक संतुलित और स्थायी बनाती है। **कर्तव्य और अनुशासन** शिक्षा को लोककल्याण की दिशा में अग्रसर करते हैं। कर्तव्यबोध व्यक्ति को उसके सामाजिक दायित्वों से परिचित कराता है और अनुशासन उसे उन दायित्वों के निर्वहन के लिए सक्षम बनाता है। जब नागरिक अपने कर्तव्यों के प्रति सजग होते हैं, तब समाज में व्यवस्था, स्थिरता और विकास संभव होता है।

इन सभी शैक्षिक मूल्यों का समन्वय भारतीय शिक्षा को लोककल्याणकारी बनाता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा केवल व्यक्ति का नहीं, बल्कि पूरे समाज का निर्माण करती है। इन मूल्यों के बिना शिक्षा न तो व्यक्ति को पूर्ण बना सकती है और न ही समाज को संतुलित और समृद्ध। इस प्रकार सत्य, अहिंसा, करुणा, सेवा, त्याग, समता, न्याय, कर्तव्य और अनुशासन जैसे शैक्षिक मूल्य भारतीय लोककल्याण दृष्टिकोण के स्तंभ हैं। शिक्षा जब इन मूल्यों को विकसित करती है, तब वह केवल ज्ञान प्रदान करने वाली प्रक्रिया न रहकर समाज को सुदृढ़, नैतिक और मानवीय बनाने वाली शक्ति बन जाती है।

**संस्थागत परंपराएँ और लोककल्याण** : भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा केवल व्यक्तिगत प्रयास नहीं रही, बल्कि एक सुव्यवस्थित सामाजिक संस्था के रूप में विकसित हुई, जिसका उद्देश्य समाज के प्रत्येक वर्ग तक ज्ञान, संस्कार और नैतिक चेतना का विस्तार करना था। इस प्रक्रिया में विभिन्न शिक्षण-संस्थाएँ—जैसे गुरुकुल, आश्रम, बौद्ध विहार, जैन संघ, मठ, पाठशालाएँ और संत-केन्द्र—लोककल्याण के जीवंत केंद्र बन गईं। इन संस्थाओं ने न केवल शिक्षा का प्रसार किया, बल्कि समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन को भी दिशा प्रदान की। इस प्रकार संस्थागत परंपराएँ भारतीय समाज में लोककल्याण के सुदृढ़ आधार के रूप में स्थापित हुईं।

गुरुकुल व्यवस्था भारतीय शिक्षा की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली संस्थागत परंपरा रही है। गुरुकुल केवल अध्ययन का स्थान नहीं था, बल्कि जीवन-निर्माण की प्रयोगशाला था। यहाँ विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में रहकर ज्ञान के साथ जीवन-मूल्य, अनुशासन, सेवा और श्रम का अभ्यास करते थे। गुरुकुलों में शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्वान तैयार करना नहीं, बल्कि समाजोपयोगी नागरिकों का निर्माण करना था। विद्यार्थी दैनिक जीवन में जल-संग्रह, कृषि, पशुपालन, आश्रम-सेवा और अतिथि-सत्कार जैसे कार्यों के माध्यम से समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को व्यवहार में सीखते थे। इससे उनमें सेवा-भाव, श्रम-सम्मान और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास होता था, जो लोककल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक है। गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति जीवन से गहराई से जुड़ी हुई थी। यहाँ शिक्षा और समाज के बीच कोई दीवार नहीं थी। विद्यार्थी समाज की वास्तविक समस्याओं से परिचित होते थे और उनके समाधान की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किए जाते थे। इस प्रकार गुरुकुल न केवल ज्ञान-केंद्र थे, बल्कि समाज-सुधार और लोककल्याण के सक्रिय केंद्र भी थे। इन संस्थानों से निकले शिक्षित नागरिक समाज में नेतृत्व, प्रशासन और सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

बौद्ध विहारों ने शिक्षा को लोकजीवन से और अधिक व्यापक रूप से जोड़ा। बौद्ध विहार केवल अध्ययन-स्थल नहीं थे, बल्कि वे चिकित्सा, अन्नदान, आश्रय और सामाजिक सेवा के केंद्र भी थे। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य करुणा, समता और अहिंसा के मूल्यों का प्रसार करना था। विहारों में शिक्षित भिक्षु समाज के गाँव-गाँव जाकर जनसामान्य को नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य-संबंधी ज्ञान और सामाजिक सद्भाव का संदेश देते थे। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा ने समाज के कमजोर वर्गों को आत्मसम्मान और जीवन-प्रेरणा प्रदान की, जिससे लोककल्याण का वास्तविक स्वरूप विकसित हुआ। जैन संघ और पाठशालाएँ भी लोककल्याण के महत्वपूर्ण केंद्र रहीं। जैन शिक्षा का मूल आधार अहिंसा, अपरिग्रह और आत्मसंयम रहा है। जैन मुनियों और आचार्यों ने शिक्षा के माध्यम से समाज में नैतिक अनुशासन, शांति और सामाजिक संतुलन स्थापित किया। जैन पाठशालाएँ व्यापारिक और सामाजिक जीवन में ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और सेवा-भाव का प्रसार करती थीं, जिससे समाज में विश्वास और स्थिरता बनी रहती थी।

मठ और आश्रम परंपरा ने भी भारतीय समाज में शिक्षा और लोककल्याण के बीच गहरा संबंध स्थापित किया। ये संस्थाएँ न केवल धार्मिक शिक्षा का केंद्र थीं, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक सुधार और लोकसेवा का भी आधार थीं। आश्रमों में निर्धनों, यात्रियों, रोगियों और असहायों को आश्रय, भोजन और चिकित्सा उपलब्ध कराई जाती थी। यह सेवा-कार्य शिक्षा का ही एक अंग माना जाता था, जिससे विद्यार्थी लोककल्याण की भावना को व्यवहार में सीखते थे।

भक्ति और संत परंपरा ने संस्थागत शिक्षा को जनसामान्य तक पहुँचाया। कबीर, नानक, रविदास, दादू, मीराबाई जैसे संतों ने अपने आश्रमों और संगठनों के माध्यम से शिक्षा को लोकभाषा में प्रस्तुत किया और समाज में समानता, मानवता और नैतिकता का प्रसार किया। इन संत-केन्द्रों ने सामाजिक भेदभाव, अज्ञान और कुरीतियों के विरुद्ध जनचेतना का निर्माण किया। शिक्षा यहाँ केवल ज्ञान नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का साधन बनी। इन सभी संस्थागत परंपराओं का साझा उद्देश्य लोककल्याण था। शिक्षा को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाकर उसे आत्मनिर्भर, नैतिक और जागरूक बनाना इन संस्थाओं का लक्ष्य था। शिक्षा और सेवा का यह समन्वय भारतीय समाज की सबसे बड़ी शक्ति रहा है। इन संस्थाओं ने न केवल व्यक्तियों का निर्माण किया, बल्कि पूरे समाज की चेतना और दिशा को आकार दिया।

आधुनिक काल में यद्यपि शिक्षा की संस्थागत संरचना बदल गई है, परंतु भारतीय संस्थागत परंपराओं का लोककल्याणकारी संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है। यदि आधुनिक विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सेवा, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक शिक्षा को संस्थागत स्तर पर अपनाया जाए, तो शिक्षा पुनः समाज-निर्माण की प्रक्रिया बन सकती है। इस प्रकार भारतीय संस्थागत परंपराएँ आज भी लोककल्याण के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई हैं।

**शिक्षा की लोक-कल्याणकारी पद्धतियाँ :** भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा केवल विषय-वस्तु या पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह एक ऐसी जीवन-प्रक्रिया रही है जो व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी, नैतिक और संवेदनशील नागरिक के रूप में गढ़ती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली ने अनेक लोक-कल्याणकारी शिक्षण-पद्धतियों का विकास किया, जिनका उद्देश्य विद्यार्थी को ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारिक जीवन, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्यों का प्रत्यक्ष अनुभव कराना था। इन पद्धतियों की विशेषता यह थी कि शिक्षा कक्षा की सीमाओं से बाहर निकलकर समाज और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ जाती थी।

इन पद्धतियों का प्रथम आधार **अनुभव-आधारित शिक्षा** था। भारतीय शिक्षा में केवल श्रवण या पाठन के माध्यम से ज्ञान देना पर्याप्त नहीं माना गया। विद्यार्थी को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से जोड़कर शिक्षित किया जाता था। गुरुकुलों और आश्रमों में विद्यार्थी कृषि-कार्य, पशुपालन, जल-संग्रह, स्वच्छता, अतिथि-सेवा, भोजन-निर्माण और आश्रम-प्रबंधन जैसे कार्यों में सक्रिय भागीदारी करते थे। इन अनुभवों के माध्यम से वे श्रम-सम्मान, आत्मनिर्भरता, सहकारिता और सामाजिक उत्तरदायित्व का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार शिक्षा सीधे लोकजीवन से जुड़कर लोककल्याण का आधार बनती थी।

भारतीय शिक्षा की एक अत्यंत महत्वपूर्ण लोक-कल्याणकारी पद्धति **सेवा-अधिगम** थी। सेवा को शिक्षा का अंग माना गया, न कि शिक्षा से अलग कोई गतिविधि। विद्यार्थी समाज की सेवा करते हुए ज्ञान अर्जित करते थे और ज्ञान अर्जित करते हुए समाज की सेवा करते थे। ग्राम-सेवा, रोगी-सेवा, वृद्ध-सेवा, अतिथि-सेवा और पर्यावरण-सेवा जैसी गतिविधियाँ शैक्षिक प्रशिक्षण का ही हिस्सा थीं। इससे विद्यार्थियों में करुणा, संवेदना, सहयोग और सामाजिक सहभागिता का विकास होता था। सेवा-अधिगम ने शिक्षा को केवल बौद्धिक प्रक्रिया न रहने देकर उसे सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रक्रिया बना दिया।

**संवाद और शास्त्रार्थ पद्धति** भी भारतीय शिक्षा की एक महत्वपूर्ण लोक-कल्याणकारी विशेषता थी। संवाद के माध्यम से विद्यार्थी स्वतंत्र चिंतन, तर्कशीलता और सहिष्णुता सीखते थे। शास्त्रार्थ में भिन्न-भिन्न मतों का सम्मान करते हुए सत्य की खोज की जाती थी। इससे विद्यार्थियों में लोकतांत्रिक दृष्टिकोण, विचार-स्वतंत्रता और सामाजिक सद्भाव का विकास होता था। यह पद्धति समाज में वैचारिक संतुलन और शांति स्थापित करने में सहायक रही।

भारतीय शिक्षा में **कथा, उपदेश और दृष्टांत पद्धति** का व्यापक प्रयोग किया गया। महाभारत, रामायण, जातक कथाएँ, पंचतंत्र, हितोपदेश और संत साहित्य की कथाएँ केवल मनोरंजन नहीं थीं, बल्कि लोक-कल्याणकारी मूल्यों के संप्रेषण का माध्यम थीं। इन कथाओं के माध्यम से सत्य, न्याय, करुणा, कर्तव्य और त्याग जैसे मूल्य सरल रूप में समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचते थे। शिक्षा इस प्रकार जनसामान्य की चेतना को आकार देती थी।

**श्रम-आधारित शिक्षा** भारतीय पद्धति की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी। शिक्षा और श्रम को एक-दूसरे से अलग नहीं किया गया। विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में श्रम करते हुए आत्मनिर्भर बनते थे। इससे उनमें श्रम के प्रति सम्मान, आर्थिक आत्मनिर्भरता

और सामाजिक उपयोगिता की भावना विकसित होती थी। श्रम-आधारित शिक्षा ने समाज में वर्ग-भेद और श्रम-अवमानना जैसी समस्याओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय शिक्षा में अनुशासन और आत्मसंयम की पद्धति भी लोक-कल्याणकारी दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण थी। अनुशासन बाहरी नियंत्रण नहीं, बल्कि आत्म-नियंत्रण के रूप में सिखाया जाता था। विद्यार्थी अपने आचरण, वाणी और विचारों पर नियंत्रण करना सीखते थे। इससे समाज में व्यवस्था, स्थिरता और नैतिक संतुलन बना रहता था। सहजीवन और सामुदायिक शिक्षा भारतीय पद्धति का एक और लोक-कल्याणकारी स्वरूप था। विद्यार्थी गुरु और सहपाठियों के साथ सामूहिक जीवन जीते थे। इससे उनमें सहयोग, सहिष्णुता, समायोजन और सामाजिक संवेदना का विकास होता था। शिक्षा व्यक्ति को समाज से जोड़ती थी, समाज से अलग नहीं करती थी।

इन सभी पद्धतियों का संयुक्त प्रभाव यह था कि शिक्षा व्यक्ति को केवल ज्ञानवान नहीं, बल्कि समाजोपयोगी, नैतिक और लोक-कल्याण के प्रति समर्पित नागरिक बनाती थी। शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविका नहीं, बल्कि जीवन का निर्माण था। समकालीन संदर्भ में यदि इन लोक-कल्याणकारी पद्धतियों को आधुनिक शिक्षा में समाहित किया जाए तो शिक्षा पुनः समाज-निर्माण की प्रक्रिया बन सकती है। सेवा-अधिगम, अनुभव-आधारित शिक्षण, नैतिक शिक्षा, सामुदायिक सहभागिता और श्रम-सम्मान को यदि आज की शिक्षा व्यवस्था में पुनः स्थान मिले, तो शिक्षा न केवल कुशल मानव-संसाधन तैयार करेगी, बल्कि एक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और लोक-कल्याणकारी समाज का निर्माण भी करेगी।

**समकालीन शिक्षा में लोक-कल्याण दृष्टिकोण की प्रासंगिकता :** इक्कीसवीं शताब्दी का विश्व तीव्र तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और सूचना-विस्फोट के दौर से गुजर रहा है। इस परिवर्तनशील परिवेश में शिक्षा का स्वरूप भी तीव्रता से बदल रहा है। आज शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य रोजगार, कौशल-विकास और आर्थिक उन्नति बनता जा रहा है। यद्यपि यह परिवर्तन आवश्यक और उपयोगी है, परंतु इसके साथ-साथ शिक्षा का मानवीय, नैतिक और सामाजिक पक्ष धीरे-धीरे कमजोर होता जा रहा है। परिणामस्वरूप समाज में नैतिक संकट, सामाजिक विघटन, मानसिक तनाव, असहिष्णुता और मूल्यहीनता जैसी समस्याएँ तीव्र होती जा रही हैं। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान-परंपरा में निहित लोक-कल्याण दृष्टिकोण आज की शिक्षा को पुनः संतुलित, मानवीय और समाजोपयोगी बनाने की दिशा में अत्यंत प्रासंगिक एवं मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

समकालीन समाज में शिक्षा प्रायः व्यक्ति-केंद्रित उपलब्धियों पर आधारित हो गई है। विद्यार्थी सफलता को व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, उच्च वेतन और सामाजिक स्थिति से जोड़ने लगे हैं। इस प्रवृत्ति में समाज, राष्ट्र और मानवता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना कमजोर पड़ती दिखाई देती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता, स्वार्थ, प्रतिस्पर्धात्मक तनाव और नैतिक विचलन जैसी समस्याएँ उभर रही हैं। भारतीय लोक-कल्याण दृष्टिकोण इस एकांगी दृष्टि का संतुलन प्रस्तुत करता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को यह स्मरण कराता है कि व्यक्ति का विकास तभी सार्थक है जब वह समाज के व्यापक हित से जुड़ा हो।

आज के युग में तकनीक ने शिक्षा को अत्यंत सुविधाजनक बना दिया है, किंतु इसके साथ ही मानवीय संपर्क, संवेदनशीलता और सहानुभूति में कमी भी देखी जा रही है। डिजिटल माध्यमों के अत्यधिक प्रयोग ने शिक्षा को यांत्रिक और निर्जीव बनाने का खतरा उत्पन्न कर दिया है। ऐसे समय में लोक-कल्याण दृष्टिकोण शिक्षा को मानवीय स्पर्श प्रदान करता है। यह दृष्टिकोण करुणा, संवाद, सहयोग और सेवा जैसे मूल्यों को शिक्षा के केंद्र में स्थापित करता है, जिससे शिक्षा तकनीक-प्रधान होने के बावजूद मानव-केंद्रित बनी रहती है।

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में बढ़ती सामाजिक असमानता, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता जैसी चुनौतियाँ मानव सभ्यता के समक्ष गंभीर प्रश्न उपस्थित कर रही हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल तकनीकी दक्षता या आर्थिक संसाधनों से संभव नहीं है। इसके लिए ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो नैतिक विवेक, सामाजिक उत्तरदायित्व और वैश्विक दृष्टि से सम्पन्न हों। भारतीय लोक-कल्याण दृष्टिकोण शिक्षा को इस दिशा में सक्षम बनाता है। यह शिक्षा को केवल ज्ञान-उत्पादन की प्रक्रिया न रखकर समाज-निर्माण की प्रक्रिया बनाता है।

समकालीन शिक्षा में जब नैतिक शिक्षा और मूल्य-शिक्षा को पाठ्यक्रम से बाहर रखा जाता है या केवल औपचारिक विषय के रूप में सीमित कर दिया जाता है, तब शिक्षा अधूरी रह जाती है। भारतीय लोक-कल्याण दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि नैतिकता और मूल्य शिक्षा के सहायक तत्व नहीं, बल्कि उसके मूल तत्व हैं। जब शिक्षा में सत्य, अहिंसा, करुणा, न्याय, सेवा और सहअस्तित्व जैसे मूल्य समाहित होते हैं, तब वह समाज में स्थायी शांति और समरसता की स्थापना करती है। आज युवाओं में बढ़ता तनाव, अवसाद, असंतोष और दिशाहीनता भी समकालीन शिक्षा की एक गंभीर चुनौती है। केवल परीक्षा-आधारित और प्रतिस्पर्धा-प्रधान शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थियों को मानसिक रूप से कमजोर बना रही है। लोक-कल्याण दृष्टिकोण शिक्षा को जीवन के व्यापक उद्देश्य से

जोड़ता है, जिससे विद्यार्थियों में आत्म-संतुलन, आत्म-सम्मान और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि का विकास होता है। यह शिक्षा युवाओं को केवल पेशेवर नहीं, बल्कि संतुलित और संवेदनशील मनुष्य बनाती है।

लोक-कल्याण दृष्टिकोण की प्रासंगिकता पर्यावरणीय शिक्षा के संदर्भ में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक विकास ने पर्यावरण संकट को गंभीर बना दिया है। भारतीय परंपरा में प्रकृति के प्रति सम्मान और सह-अस्तित्व की भावना शिक्षा का अंग रही है। जब शिक्षा लोक-कल्याण दृष्टि से प्रेरित होती है, तब वह पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक कर्तव्य के रूप में स्थापित करती है, जिससे सतत विकास संभव होता है। शिक्षा में लोक-कल्याण दृष्टिकोण लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सुदृढ़ करता है। यह नागरिकों को अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों के प्रति भी सजग बनाता है। जब शिक्षा सामाजिक उत्तरदायित्व और सहभागिता को प्रोत्साहित करती है, तब लोकतंत्र मजबूत होता है और समाज अधिक न्यायपूर्ण बनता है।

इस प्रकार समकालीन शिक्षा के समक्ष उत्पन्न नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक चुनौतियों का समाधान भारतीय लोक-कल्याण दृष्टिकोण में निहित है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को केवल आर्थिक उन्नति का साधन न बनाकर मानवता के कल्याण का माध्यम बनाता है। यही कारण है कि आज के वैश्विक संकटों के बीच भारतीय ज्ञान-परंपरा का यह शैक्षिक दृष्टिकोण पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक और आवश्यक हो गया है।

## II. अपेक्षित सुझाव

यदि भारतीय ज्ञान-परंपरा के लोक-कल्याणकारी दृष्टिकोण को समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में प्रभावी रूप से समाहित किया जाए, तो शिक्षा न केवल अकादमिक उपलब्धि का माध्यम बनेगी, बल्कि समाज-निर्माण और राष्ट्र-विकास की सशक्त आधारशिला भी बनेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

पाठ्यचर्या के स्तर पर यह आवश्यक है कि नैतिक शिक्षा, नागरिकता शिक्षा और समुदाय-सेवा परियोजनाओं को शिक्षा-कार्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाए। नैतिक शिक्षा विद्यार्थियों में सत्य, अहिंसा, करुणा, कर्तव्य और न्याय जैसे मूल्यों का विकास करती है, जबकि नागरिकता शिक्षा उन्हें उनके अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग बनाती है। समुदाय-सेवा परियोजनाएँ विद्यार्थियों को समाज की वास्तविक समस्याओं से जोड़ती हैं और उनमें सेवा-भाव, सामाजिक सहभागिता तथा लोक-कल्याण की भावना विकसित करती हैं।

शिक्षण विधियों में परिवर्तन करते हुए प्रोजेक्ट आधारित अधिगम, सेवा-अधिगम और स्थानीय ज्ञान के समावेश को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। प्रोजेक्ट कार्य विद्यार्थियों को समस्या-समाधान, सहयोग और नेतृत्व जैसे गुण सिखाते हैं। सेवा-अधिगम के माध्यम से विद्यार्थी समाज-सेवा करते हुए व्यवहारिक ज्ञान अर्जित करते हैं, जिससे शिक्षा जीवन से जुड़ती है। स्थानीय ज्ञान का समावेश शिक्षा को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध, प्रासंगिक और समाजोपयोगी बनाता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में मूल्य-आधारित नेतृत्व और समावेशी दृष्टिकोण को केंद्र में रखा जाना चाहिए। शिक्षक केवल विषय-विशेषज्ञ न होकर मूल्य-वाहक और सामाजिक मार्गदर्शक भी हों। प्रशिक्षण में नैतिकता, संवेदनशीलता, लोकतांत्रिक व्यवहार और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे तत्वों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाए, जिससे शिक्षक स्वयं लोक-कल्याणकारी शिक्षा के संवाहक बन सकें।

मूल्यांकन प्रणाली में भी परिवर्तन आवश्यक है। मूल्यांकन केवल परीक्षा और अंक-आधारित न होकर विद्यार्थियों के व्यवहार, सहभागिता, सामाजिक योगदान और सामुदायिक सहभागिता पर आधारित होना चाहिए। इससे शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक प्रदर्शन न रहकर समग्र व्यक्तित्व-विकास बन जाएगा।

## III. निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा का मूल स्वरूप लोक-कल्याण से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय चिंतन में शिक्षा का लक्ष्य केवल बौद्धिक विकास, कौशल अर्जन अथवा आजीविका की तैयारी नहीं रहा है, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का ऐसा निर्माण करना

रहा है जो समाज, राष्ट्र और मानवता के कल्याण में सक्रिय भूमिका निभा सके। इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा दर्शन आधुनिक शिक्षा के लिए भी एक व्यापक, संतुलित और मानवीय मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। भारतीय परंपरा में आत्म-विकास और लोक-कल्याण को अलग-अलग नहीं माना गया है। आत्म-विकास व्यक्ति को विवेकशील, नैतिक और संवेदनशील बनाता है, जबकि लोक-कल्याण इस आत्म-विकास का सामाजिक प्रतिफल है। जब व्यक्ति अपने ज्ञान, शक्ति और संसाधनों का उपयोग समाज के हित में करता है, तब शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करती है। यही समन्वय भारतीय शिक्षा को विशिष्ट और स्थायी बनाता है। भारतीय शिक्षा में निहित लोक-कल्याणकारी मूल्य — जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, सेवा, त्याग, न्याय, समता, कर्तव्य और अनुशासन-समाज के नैतिक और सामाजिक ढाँचे को मजबूत करने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इन मूल्यों के अभाव में शिक्षा केवल तकनीकी या व्यावसायिक प्रशिक्षण तक सीमित रह जाती है और समाज में नैतिक संकट, सामाजिक असंतुलन तथा मानवीय विघटन उत्पन्न होता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अत्यधिक रोजगारोन्मुख, प्रतिस्पर्धात्मक और तकनीक-केंद्रित होती जा रही है, जिससे उसके नैतिक, सामाजिक और मानवीय उद्देश्य कमजोर पड़ रहे हैं। इस स्थिति में भारतीय ज्ञान-परंपरा का लोक-कल्याण दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा को पुनः संतुलित, संवेदनशील और समाजोपयोगी बनाने की क्षमता रखता है। यदि समकालीन शिक्षा भारतीय लोक-कल्याण दृष्टिकोण से प्रेरणा लेकर अपने उद्देश्य, संरचना और प्रक्रिया में परिवर्तन करती है, तो शिक्षा न केवल आर्थिक विकास का साधन बनेगी, बल्कि एक न्यायपूर्ण, नैतिक, संवेदनशील और समरस समाज के निर्माण की सशक्त आधारशिला भी बनेगी। यही किसी भी शिक्षा-व्यवस्था की सर्वोच्च सफलता है।

### संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, आर. (2007). *जैन शिक्षा परंपरा और नैतिक विकास*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास।
2. अग्रवाल, जे. सी. (2014). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली: शिप्रा प्रकाशन।
3. गाँधी, मोहनदास करमचन्द. (1962). *बुनियादी शिक्षा*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन।
4. जोशी, राजेश. (2023). भारतीय ज्ञान-परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का समन्वय. *जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन*, 49(2), 25–39.
5. जोशी, सीमा. (2024). भारतीय मूल्य और समकालीन शिक्षा व्यवस्था. *भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका*, 11(1), 14–28.
6. कुमार, कृष्ण. (2005). *शिक्षा का राजनीतिक एजेंडा*. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन।
7. कुमारी, सुनीता. (2020). नैतिक शिक्षा और सामाजिक उत्तरदायित्व. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन*, 8(1), 45–53.
8. मेहता, प्रतीक. (2024). समकालीन शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा की भूमिका. *एशियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल स्टडीज*, 12(1), 61–74.
9. मिश्रा, शिवकुमार. (1998). *भारत में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन*. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग।
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति. (2020). *शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार*. नई दिल्ली।
11. पटेल, दीपक. (2023). सेवा-अधिगम और मूल्य आधारित शिक्षा. *जर्नल ऑफ वैल्यू एजुकेशन*, 15(3), 88–101.
12. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1962). *भारतीय दर्शन* (खंड 1–2). लंदन: जॉर्ज एलेन एवं अनविन।
13. राय, ललित. (2003). *बौद्ध शिक्षा और सामाजिक विकास*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
14. शर्मा, आर. एन. (1985). *भारत में शिक्षा का इतिहास*. मेरठ: सुरजीत प्रकाशन।
15. सिंह, अमर. (2016). शिक्षा, नैतिकता एवं नागरिकता. *इंडियन जर्नल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च*, 9(2), 120–132.
16. टैगोर, रवीन्द्रनाथ. (1961). *विश्वमानव की ओर*. नई दिल्ली: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
17. वर्मा, पवन. (2011). *भारतीय होना: इक्कीसवीं सदी का सत्य*. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
18. वर्मा, सीमा. (2011). भक्ति आंदोलन और लोकजागरण. *भारतीय संस्कृति जर्नल*, 7(2), 55–67.
19. वर्मा, सुनील, एवं गुप्ता, राजेश. (2024). मूल्य आधारित शिक्षा एवं लोककल्याण. *जर्नल ऑफ कंटेम्परेरी एजुकेशन*, 14(2), 33–47.
20. विवेकानन्द, स्वामी. (1989). *शिक्षा और चरित्र निर्माण*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
21. भावे, विनोबा. (1974). *शिक्षा और समाज*. वार्धा: सर्व सेवा संघ।
22. दास, अरुण. (2019). शिक्षा में नैतिक मूल्यों का महत्व. *एजुकेशन टुडे*, 6(1), 41–52.
23. गुप्ता, मनोज. (2021). नागरिकता शिक्षा और लोकतांत्रिक चेतना. *शिक्षा विमर्श*, 9(3), 77–90.
24. शुक्ल, रमेश. (2018). भारतीय शिक्षा दर्शन का विकास. *भारतीय शिक्षा जर्नल*, 10(2), 22–36.
25. मालवीय, मदन मोहन. (1957). *राष्ट्रीय शिक्षा और भारतीय संस्कृति*. प्रयागराज: भारती भवन।

## International Journal of Advanced Research in Education and Technology

ISSN: 2394-2975

Impact Factor: 8.152